कायोत्सर्ग : प्रतिक्रमण का मूल प्राण

श्री रणजीतसिंह कूमट

सेवानिवृत्त आई.ए.एस. श्री रणजीतसिंह जी कूमट चिन्तनशील साधक विद्वान् हैं। आपका आलेख कायोत्सर्ग के स्वरूप, महत्त्व एवं वर्तमान में प्रचलित परिपाटी में संशोधन पर प्रकाश डालता है। -सम्पादक

पाँचवाँ आवश्यक 'कायोत्सर्ग' जैन साधना-पद्धति का विशिष्ट शब्द है जिसका अर्थ है-काया का उत्सर्ग या त्याग। यहां शरीर त्याग का अर्थ मृत्यु नहीं है, वरन् देहासक्ति या शरीर के प्रति ममता का त्याग है।

प्रतिक्रमण का मूल उद्देश्य कायोत्सर्ग है, क्योंकि यही एक माध्यम है जिससे हम अपने अन्तर्मन में या स्वभाव में स्थित हो सकते हैं। प्रतिक्रमण प्रारम्भ करने पर अनुमति लेने का पाठ जो निम्न प्रकार बोला जाता है, उससे भी स्पष्ट है कि प्रतिक्रमण का मूल उद्देश्य कायोत्सर्ग ही है-

"इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसियं (रायसियं) पडिक्कमणं ठाएमि देवसियं (रायसियं) णाणदंसणचरित्ताचरित्ततव-अइयार-चिंतणत्थं करेमि काउस्सग्गं"

अर्थ— भंते! आपकी आज्ञा का सम्मान करते हुए मेरी इच्छा है कि मैं दिन के लिये (रात्रि के लिये) प्रतिक्रमण में स्थापित होकर दिन भर में (रात्रि में) ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप के आराधन में हुए अतिचारों के संबंध में चिन्तन करने के लिये कायोत्सर्ग करूं।

हमारे दुःखों का मूल कारण है शरीर व इन्द्रिय.सुख के प्रति ममता, जिसके लिए हम क्या-क्या उपाय और परिश्रम नहीं करते? सुख के साधनों को एकत्र करने में ही सारा जीवन बिता देते हैं। शरीर के साथ शरीर के सुख के साधनों के प्रति आसक्ति बढ़ जाती है। और कभी-कभी ये सुख के साधन शरीर से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, साधन ही लक्ष्य बन जाते हैं। साधनों के संग्रह एवं संरक्षण के लिए अत्यधिक परिश्रम कर शरीर का भी होम कर देते हैं। एक कामना की पूर्ति अनेक नई कामनाओं को जन्म देती है और सभी कामनाओं की पूर्ति असंभव है। कामना अपूर्ति से उत्पन्न तनाव से शरीर में अनेक बीमारियाँ घर कर लेती हैं, जिससे साधनों से सुख प्राप्त करने की बजाय दुःख का दौर शुरू हो जाता है।

धर्म के जो भी पैगम्बर, अवतार या तीर्थंकर हुए, वे बहुत बड़े चिकित्सक साबित हुए हैं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि उन्होंने यह जान लिया कि मनुष्य के दुःख का मूल कारण है- "बीमार मन" और मन का इलाज ही सही व स्थायी इलाज है। जब तक मन बाहरी साधनों या वस्तुओं से आसक्त है, मन का इलाज संभव नहीं है। साधनों से आसक्ति हटाने के लिये शरीर से ममता या आसक्ति हटाना आवश्यक है, क्योंकि साधनों का संग्रह शरीर के लिये ही किया जाता है। शरीर के प्रति ममता साधना में सबसे बड़ी बाधा है। शरीर से ममता भाव हटाना, देह में रहकर भी देहातीत स्थिति में हो जाना अर्थात् कायोत्सर्ग करना है। कायोत्सर्ग को व्रणचिकित्सा अर्थात् घावों की चिकित्सा भी कहा है। मन में उत्पन्न विकारों से हुए घावों को ठीक करने के लिये कायोत्सर्ग एक प्रकार का मरहम है। जैन आगम के महत्त्वपूर्ण सूत्र 'आवश्यक सूत्र' में कायोत्सर्ग में स्थापित होने का सूत्र निम्न प्रकार है-

"तस्स उत्तरीकरणेणं पायच्छित्तकरणेणं, विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं"-आवश्यकसूत्र

अर्थ--- जीवन को अधिकाधिक परिष्कृत करने, प्रायश्चित्त करने, विशुद्धि करने, शल्य से मुक्ति पाने और पाप कर्म का निर्घात अर्थात् नाश करने के लिये कायोत्सर्ग करता हूँ।

दैनिक जीवन में जो भी कार्य किये जाते हैं और जिनके पीछे हमारे कषाय यथा- क्रोध, मान, माया, लोभ की प्रेरणा होती है, वे मन पर संस्कार कायम करते हैं, अपराध भाव को जन्म देते हैं और क्रिया-प्रतिक्रिया की शृंखला को जन्म देते हैं। ये ही कर्म संस्कार हमारे मन के शल्य या कांटें बन कर मन को बीमार करते हैं। इन शल्यों से मुक्ति पाना ही विशुद्धीकरण एवं कर्म का निवारण है। यह कायोत्सर्ग से संभव है।

प्रायश्चित्त का साधारण अर्थ है- गलत किये का पश्चात्ताप और भविष्य में पुनः न करने का संकल्प। परन्तु सही अर्थ है चित्त में स्थित होकर चित्त को देखना। प्रायश्चित्त करने से मन का विशुद्धीकरण होता है और इसी से मन के शल्य यानी कांटे निकल जाते हैं और व्यक्ति शल्य से मुक्त हो जाता है। इससे जीवन परिष्कृत होता है और व्यक्ति उत्तरोत्तर प्रगति करता है।

यह कार्य अन्तर्मुखी हुये बिना संभव नहीं है। अन्तर्मुखी होने का अर्थ है बाहर से अपने आपको मोड़ कर अन्दर झांकना या स्वनिरीक्षण करना। हम दूसरों की त्रुटियाँ तो बहुत आसानी से देखते हैं व चर्चा भी करते हैं, परन्तु अपनी ओर कम ही देखते हैं और कोई हमारे दोष इंगित करे तो आगबबूला हो जाते हैं या तिलमिला उठते हैं। स्वनिरीक्षण वह विधि है जिससे हम स्वयं को देख कर स्वयं ही अपना सुधार करते हैं।

कायोत्सर्ग वह विधि है जिससे अवचेतन मन तक पहुंच कर मन की गहराइयों तक जा सकें और संस्कार मुक्त हो सकें। कायोत्सर्ग अर्थात् काया का उत्सर्ग। शरीर का ममत्व कम होने पर शरीर का शिथिलीकरण होता है और तनावों से मुक्ति पाते हैं। देह की ममता से हट कर देह पर उठने वाली संवेदनाओं को निष्पक्ष भाव से देखने लगते हैं और मन ऐसी स्थिति में आ जाता है जैसे देह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी अन्य की है और जो भी घटित हो रहा है उसे बाहर से उदासीन भाव से देख रहे हैं। अब तक देह पर होने वाली घटनाओं को मन निष्पक्ष भाव से न देखकर यह चुनाव करता था कि यह संवेदना या घटना अच्छी है या बुरी और इस प्रकार राग-द्वेष में फंस जाता था। जो प्रिय है वह और चाहिये, जो अप्रिय है वह हटनी चाहिये। इसी प्रतिक्रिया में और दुःख या सुख के भोगने में ही जीवन बीत जाता है, परन्तु अब कायोत्सर्ग में भोगने की बजाय केवल द्रष्टाभाव से देखना है और भोक्ता भाव से मुक्ति पानी है। इसी अभ्यास से देहातीत हो सकते हैं।

बिना अन्तर्मुखी हुए हम यदि स्वनिरीक्षण करते हैं तो स्वभावानुसार अपनी भूलों का सही रूप से निराकरण करने की बजाय उनका औचित्यीकरण (Justification) करने लग जाते हैं और उन परिस्थितियों या व्यक्तियों को दोष देने लगते हैं जिनकी वजह से हमने कोई अकरणीय कार्य किया। यदि क्रोध किया तो उन परिस्थितियों को दोष देंगे या उन व्यक्तियों को जिम्मेदार ठहरायेंगे जिनकी वजह से क्रोध आया। औचित्यीकरण का दौर चलने पर निशल्यीकरण संभव नहीं है। इसके लिये ऐसी तकनीक का उपयोग करना पड़ेगा जिससे सचेत मन का उपयोग कम से कम हो, क्योंकि सचेत मन प्रत्येक कार्य का औचित्य ढूंढ लेता है। यह इसका स्वभाव बन चुका है।

मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि जाग्रत मस्तिष्क कुल मस्तिष्क का बहुत छोटा हिस्सा है और बहुत बड़ा हिस्सा है सुषुप्त मस्तिष्क, जो कभी सोता नहीं और हमारी विभिन्न गतिविधियों और आवेगों पर नियन्त्रण रखता है। जब तक सुषुप्त मस्तिष्क पर हमारा नियन्त्रण नहीं होगा और इसके प्रति जागृति नहीं होगी हमारे कार्यकलापों व आवेगों पर हमारा नियन्त्रण नहीं होगा। कायोत्सर्ग में सुषुप्त मन तक पहुंचने का प्रयास होता है। जिस सुषुप्त मस्तिष्क या अवचेतन मन में पूर्व से संस्कार भरे हैं और जिससे हमारे आवेग (Emotions) संचालित या नियन्त्रित होते हैं, उसके प्रति जागरूक हुए बिना हम अपने मन व शरीर पर पूर्ण रूप से नियन्त्रण नहीं कर सकते।

अवचेतन मन में बहुत से विचार व संस्कार जन्म (एवं जन्मान्तर) से भरे पड़े हैं और हमारे कई कृत्य ऐसे होते हैं जिनको हम सचेत रूप से करते ही नहीं और हो जाने के बाद ताज्जुब या पश्चात्ताप करते हैं कि यह कैसे हो गया। अतः सही रूप से निःशल्य होने के लिये अवचेतन मन तक पहुंचना आवश्यक है और यह कायोत्सर्ग के माध्यम से संभव है।

कायोत्सर्ग में जब शरीर शिथिल होता है तब जाग्रत मस्तिष्क भी शिथिल हो जाता है, परन्तु सुषुप्त मन सक्रिय रहता है और उसकी गतिविधियों को साक्षीभाव से देखने से आवेगों व संस्कारों को भी देखने का मौका मिलता है। संस्कार उभर कर शरीर पर संवेदनाओं के रूप में आते हैं जैसे शरीर में कहीं दर्द, कहीं फड़कन, खुजलाहट, सरसराहट या कोई सुखद संवेदना जैसे दर्द का कम होना, स्फूर्ति होना, चिन्मयता आदि। इन संवेदनाओं के प्रति सजग रह कर केवल यह देखना है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये संवेदनाएँ अनित्य हैं और इनके प्रति क्या राग और क्या द्वेष। यों संवेदनाएं देखते-देखते संस्कारों व देह के व्यापार से पार हो जाते हैं, परन्तु असावधानी होने पर या देखने की प्रक्रियाा न जानने पर प्रतिक्रिया कर बैठते है और संस्कार बनाने की नई शृंखला प्रारम्भ कर लेते हैं, प्रतिक्रिया में जीना बंधन का मार्ग है और सजगता से देख कर द्रष्टा भाव में रहना वीतरागता की ओर बढ़ने का मार्ग है।

पाक्षिक, चातुर्मासिक एवं सम्वत्सरी के प्रतिक्रमण में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है, क्योंकि कायोत्सर्ग में लोगस्स का पाठ आमतौर पर चार बोला जाता है, परन्तु पाक्षिक प्रतिक्रमण में आठ बार, चातुर्मासिक में १२ बार व सम्वत्सरी प्रतिक्रमण में २० बार या ४० बार बोलने या मन ही मन उच्चारने की परिपाटी है। मन्दिरमार्गी प्रथा में सम्वत्सरी के प्रतिक्रमण में करीब तीन से चार घंटे लगते है।

प्रतिक्रमण का मूल प्राण है कायोत्सर्ग और परिपाटी में उसे मात्र पांचवें आवश्यक में समेट कर रख दिया गया। वह भी मात्र चार से २० लोगस्स के पाठ मन में गुनगुनाने के लिये। कायोत्सर्ग की मूल भावना को ही भुला दिया गया और इससे प्रतिक्रमण के मूल उद्देश्य की प्राप्ति से हम वंचित हो गये।

अतः आवश्यक है कि वर्तमान परिपाटी एवं व्यवहार की समीक्षा की जाय व मौलिक संकल्पना के अनुरूप व्यवहार को सुधारा जाय। सभी आचार्यों व विद्वद्जनों से प्रार्थना है कि प्रतिक्रमण की मूल भावना के अनुरूप परिपाटी की समीक्षा एवं सुधार कर साधकों को सही रूप से कायोत्सर्ग में स्थित होने की कला सिखायें और प्रतिक्रमण से अपेक्षित लाभ, "निःशल्यीकरण, विशुद्धिकरण" प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करें। *(जिनवाणी, अगस्त 2002 से संकलित अंश)*

–सेवानिवृत्त आई.ए.एस., सी–303, हीरानन्दानी गार्डन, डेफोडिल, पवई, मुम्बई (महा.)–400076

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org